नागरिकता कानून : खुलने लगी झूठ की परतें

शिवानंद द्विवेदी

जर्मनी के नाजी नेता और हिटलर के करीबी गोयबल्स का कहना था कि एक झूठ को सौ बार बोलो तो वह सच लगने लगेगा. दुनिया में सूचना क्रांति का विकास जिस गति से हुआ, गोयबल्स की यह 'थ्योरी' भी खूब आजमाई गई. आश्चर्य की बात है कि भारत में 'गोयबल्स थ्योरी' का उसके मूल विचारों का धुर-विरोध करने वाले कथित प्रगतिशील बुद्धिजीवियों ने ही अपने आचरण में बहुधा प्रयोग किया. संसद के बीते सत्र में नागरिकता (संशोधन) कानून-2019 पारित हुआ. राष्ट्रपति की मुहर के बाद यह कानून अमल में आ गया है. किंतु इस कानून को लेकर गलत सूचनाओं का एक ऐसा अनवरत सिलसिला चलाया गया, जिसने छात्र आंदोलन के बहाने हिंसा और उपद्रव की शक्ल ले ली.

वैसे तो नागरिकता कानून के प्रावधान अत्यंत स्पष्ट हैं और इसको लेकर अनेक बार बताया जा चुका है कि इससे भारत में किसी भी धर्म के किसी व्यक्ति की नागरिकता प्रभावित नहीं होती है. यह विशुद्ध रूप से भारत की सीमा से सटे तीन ऐसे देशों, जो इस्लाम को अपने राज्य का मजहब घोषित कर चुके हैं, से धार्मिक प्रताड़ना की वजह से 31 दिसंबर 2014 तक भारत आए वहां के अल्पसंख्यकों हिंदू, सिख, बौद्ध, जैन, पारसी और ईसाई धर्मावलंबियों को नागरिकता देने के लिए बना कानून है. इसमें आसानी से समझ आने वाली बात है कि यह कानून एक विशेष परिस्थिति में नागरिकता देने का जरूर है, लेकिन किसी भी हालत में यह कानून भारत में रहने वाले किसी धर्म के किसी भी व्यक्ति की नागरिकता पर असर डालने वाला नहीं है.

आसान शब्दों में समझे जाने वाले इस विषय को लेकर देश में ऐसी भ्रामक स्थिति का पैदा होना, चकित करता है. किंचित संदेह नहीं कि नागरिकता संशोधन कानून पर विरोध राजनीति प्रायोजित है. संसद में जब इस कानून पर चर्चा हो रही थी तब कांग्रेस सहित अन्य विरोधी दलों ने अनुच्छेद-14 के उल्लंघन के आधार पर इस कानून को 'विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित करने वाला' बताकर असंवैधानिक सिद्ध करने का प्रयास किया. किंतु चर्चा में यह बात टिक नहीं सकी. यहां तक कि अनेक कानूनविदों ने भी इसे अनुच्छेद-14 का उल्लंघन मानने से इनकार कर दिया.सीधी सी बात है कि अगर भारत के अंदर किसी खास वर्ग के लिए विशेष प्रावधान किए जाने से अनुच्छेद-14 का उल्लंघन नहीं होता है तो इस कानून से भी उल्लंघन होने का कोई प्रश्न नहीं खड़ा होता है. लिहाजा इस आधार पर इस कानून का विरोध तर्कहीन है. 'रिजनेबल क्लासिफिकेशन' की छूट अनुच्छेद-14 में मिली हुई है और इसके तहत अनेक वर्गों को विशेष प्रावधानों का लाभ संविधान सम्मत व्यवस्था में मिल रहा है. इसके बाद देश की सर्वोच्च निर्वाचित पंचायत संसद से पारित इस कानून पर रोक लगाने को लेकर 59 याचिकाएं सुप्रीम कोर्ट में डाली गईं, किंतु अदालत ने भी पर इस पर रोक लगाने से मना कर दिया.सही नहीं कानून की संवैधानिकता पर सवाल

नागरिकता संशोधन कानून की संवैधानिकता पर सवाल उठाने वाली कांग्रेस अपने अतीत के कदमों को या तो भूल रही है, अथवा भूलने का ढोंग कर रही है. नागरिकता का यह कानून वर्ष 1955 में कांग्रेस शासन के दौर में ही बना और समय-समय पर अनेक संशोधनों से होते हुए आज यहां तक पहुंचा है. वर्ष 2003 में इसी कानून में संशोधनों के आधार पर पाकिस्तान और बांग्लादेश से आने वाले हिंदू और सिख शरणार्थियों को गुजरात और राजस्थान के कुछ जिलों में नागरिकता देने का प्रावधान किया गया था. राजस्थान की चर्चा करते हुए नहीं भूलना चाहिए कि 2009 में खुद राजस्थान के मुख्यमंत्री अशोक गहलोत ने तत्कालीन गृहमंत्री पी चिदंबरम को पत्र लिखकर हिंदू और सिख शरणार्थियों को नागरिकता देने का विषय उठाया था.

धार्मिक भेदभाव का आधार बता बनाया गया भ्रामक माहौल

मूल रूप में देखें तो नागरिकता कानून को लेकर कांग्रेस सहित इस कानून से असहमत दल दो सवाल उठा रहे हैं. पहला यह कि यह संशोधन सिर्फ पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफगानिस्तान के लिए क्यों. दूसरा सवाल यह कि यह कानून धार्मिक भेदभाव

करता है. इन्हीं दो सवालों के इर्द-गिर्द देश में भ्रामक वातावरण तैयार करने का प्रयास इन राजनीतिक दलों द्वारा किया जा रहा है और यह साबित किया जा रहा है कि यह कानून मुस्लिम-विरोधी है.

भारत के नागरिक पर लागू नहीं

बात दूसरे सवाल की करें तो कहा जा रहा है कि इस कानून से मुसलमानो को बाहर क्यों रखा गया है? पहली बात जो देश के हर नागरिक को स्पष्ट होनी चाहिए कि यह कानून भारत के किसी भी नागरिक पर लागू नहीं होता, लिहाजा भारत के मुसलमानो पर भी इसका असर नहीं पड़ेगा. मूल सवाल यह कि जब सीमावर्ती तीन देशों के हिंदुओं, सिखों, बौद्धों, जैनियों, पारसियों और ईसाईयों पर यह कानून लागू किया गया है तो वहां के मुसलमानो से क्या समस्या है? आदर्शवाद के कल्पनालोक में यह सवाल निश्चित तौर पर हर उस व्यक्ति को आकर्षित कर सकता है जो इसे सिर्फ एक मामूली सवाल मानकर जवाब तलाश रहा हो, किंतु इस सवाल की तहें इतनी सपाट नहीं हैं जितनी सरसरी नजर से देखने पर दिखती हैं. इतिहास और परिस्थिति के आधार पर इस सवाल का धरातल न ही समतल है और न ही सरलीकृत. यह सवाल सात दशक पहले हुए एक राजनीतिक, सामाजिक और भौगोलिक उथल-पुथल की कोख से निकला है.

पाक-बांग्लादेश में घटती हिंदू आबादी

भारत में मुसलमानो की बढ़ी जनसंख्या और पाकिस्तान तथा बांग्लादेश में वहां के अल्पसंख्यकों की जनसंख्या के गिरते हुए आंकड़े बताते हैं कि भारत ने तो अपने वादे को निभाया, किंतु पाकिस्तान की तरफ से नेहरू-लियाकत समझौते की पूरी तरह से अनदेखी की गई. यह स्वीकारने में कोई गुरेज नहीं कि वह समझौता पाकिस्तान में रह गए अल्पसंख्यक हिंदुओं और सिखों के साथ एक छलावा साबित हुआ. समाजवादी नेता राममनोहर लोहिया ने भी इस संबंध में चिंता जताते हुए लोकसभा में कहा था कि 'नेहरू-लियाकत समझौते में अल्पसंख्यकों की सुरक्षा का वादा किया गया था, लेकिन फिर भी पाकिस्तान में उनके साथ अत्याचार हो रहा है.'

आज कानून में संशोधन लाकर तीन देशों के धार्मिक प्रताड़ना के शिकार छह अल्पसंख्यक समुदायों को नागरिकता देने का बीड़ा मोदी सरकार ने उठाया है. यह भारतीय जनता पार्टी के इतर लगभग सभी दलों के नेताओं की उस दौर में चिंता रही है. आज भले ही कम्युनिस्ट पार्टी इस कानून का विरोध कर रही है, किंतु 12 फरवरी 1964 को भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के नेता एच एन मुखर्जी ने लोकसभा में कहा था, 'पाकिस्तान में हिंदुओं के खिलाफ बातें की जा रही हैं, जो लोग आ रहे हैं और पहले आ चुके हैं उन्हें शरणार्थी कहा जाता है. वे शरणार्थी नहीं हैं. यह देश उनका घर होना चाहिए.'

मनमोहन सिंह उठा चुके हैं मामला

इतना ही नहीं, वर्ष 2003 में खुद डॉ. मनमोहन सिंह ने विपक्ष में रहते हुए पाकिस्तान और बांग्लादेश के अल्पसंख्यकों को नागरिकता देने का मुद्दा राज्यसभा में उठाया था. वर्ष 2005 में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार के तत्कालीन विदेश राज्यमंत्री ई अहमद ने, उसके बाद वर्ष 2007 में उसी सरकार के विदेश राज्यमंत्री श्रीप्रकाश जायसवाल ने, और फिर वर्ष 2010 में लोकसभा में विदेश मंत्री एस एम कृष्णा ने इस मामले को सदन में उठाया था. इसके बाद वर्ष 2012 में कांग्रेस शासित राज्य असम के तत्कालीन मुख्यमंत्री तरुण गोगोई पड़ोसी देश में धार्मिक आधार पर उत्पीड़न का मुद्दा उठा चुके हैं.

आज जब एक ऐसी समस्या के समाधान का रास्ता मोदी सरकार कानूनी आधार पर निकाल रही है तो कांग्रेस सहित अन्य दलों द्वारा भ्रम का वातावरण तैयार करके देश के अंदर अस्थिरता की स्थिति पैदा करना उचित नहीं है. इतिहास के तथ्य इस बात के गवाह हैं कि जो निर्णय आज मोदी सरकार ने पाकिस्तान, बांग्लादेश तथा अफगानिस्तान के धार्मिक रूप से प्रताड़ित अल्पसंख्यकों के मानवाधिकारों के लिए लिया है, वह किसी भी भारतीय नागरिक का अहित नहीं करता है तथा इसका समर्थन किसी न किसी दौर में लगभग सभी प्रमुख दलों ने किया है.

नागरिकता के संदर्भ में समयानुकूल बदलाव को समझने की दरकार

नागरिकता संशोधन कानून जैसे विषय पर चर्चा करते हुए हम गृहमंत्री अमित शाह द्वारा कही गई 'रिजनेबल क्लासिफिकेशन' की बात की अनदेखी नहीं कर सकते हैं. 'रिजनेबल क्लासिफिकेशन' की चर्चा के क्रम में हमें पहले से चले आ रहे नागरिकता

कानून में ओवरसीज नागरिकों के लिए तय कुछ प्राविधानों को देखना होगा. इस कानून के अनुसार नागरिकता के संबंध में जो प्रावधान लागू किए गए हैं, वो पाकिस्तान और बांग्लादेश के व्यक्तियों पर लागू नहीं होते हैं. अब सवाल यह है कि जब बाकी देशों के व्यक्तियों के लिए नागरिकता का प्रावधान किया गया तो पाकिस्तान और बांग्लादेश को क्यों इससे बाहर रखा गया था? इसके पीछे भी कारण 'रिजनेबल क्लासिफिकेशन' का ही समझ में आता है.

किंतु आश्चर्यजनक है कि वर्ष 2005 के संशोधन में खुद 'रिजनेबल क्लासिफिकेशन' के आधार पर पाकिस्तान और बांग्लादेश को अलग रखने वाले प्राविधानों को बरकरार रखने वाली कांग्रेस वर्तमान में इन देशों में रहने वाले प्रताड़ित अल्पसंख्यकों की नागरिकता के लिए लाए गए कानून का विरोध कर रही है. कहने की आवश्यकता नहीं कि यह कांग्रेस के दोहरे चरित्र का द्योतक है. हमें बिना किसी भ्रम में रहे यह समझना होगा कि समय और परिस्थिति के हिसाब से अलग-अलग समय पर सरकारों ने नागरिकता कानून में जरूरत के अनुरूप बदलाव किया है. पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफगानिस्तान में रहने वाले वहां के अल्पसंख्यर्क हिंदू, सिख, ईसाई, बौद्ध, जैन और पारसी समुदाय के लोगों को इसी 'रिजनेबल क्लासिफिकेशन' के तहत भारत की नागरिकता देने की बात की जा रही है.

कोरा भ्रम साबित हुआ जिन्ना का कथन

देश की आजादी के बाद तत्कालीन कांग्रेस पार्टी ने जिस देश विभाजन को स्वीकार किया, उसका आधार मजहबी था. दरअसल यहां 'मजहबी' शब्द का प्रयोग इसलिए करना पड़ रहा है, क्योंकि पाकिस्तान की मांग करने वालों में प्रमुख मोहम्मद अली जिन्ना का कथन, 'पाकिस्तान एक सेक्युलर, लोकतांत्रिक और आधुनिक राज्य होगा,' कोरा भ्रम साबित हुआ. पूर्व प्रधानमंत्री इंद्र कुमार गुजराल भी इसे 'अल्पकालिक भ्रम' बता चुके हैं. दरअसल बंटवारे के बाद भारत एक 'पंथ-निरपेक्ष' लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में आगे बढ़ा, जबकि पाकिस्तान ने कुछ ही वर्षों में अपने राज्य का पंथ 'इस्लाम' को घोषित कर दिया.

चूंकि विभाजन की त्रासदी के बावजूद भारत में बड़ी संख्या में मुसलमान रह गए थे और पाकिस्तान में भी गैर-मुस्लिम बड़ी संख्या में रह गए थे. अत: उनकी चिंता तत्कालीन दौर के महात्मा गांधी सहित लगभग सभी दलों के भारतीय नेताओं को थी. आजादी के तुरंत बाद के वर्षों में कांग्रेस ने अपने प्रस्ताव में पाकिस्तान के 'गैर-मुस्लिमों' की स्थिति पर चिंता जताई थी. तत्कालीन परिस्थिति के आलोक में ही नेहरू-लियाकत समझौता हुआ था और दोनों देशों द्वारा अपने सीमा क्षेत्र के अल्पसंख्यक हितों की रक्षा का वादा संकल्प के रूप में व्यक्त किया गया.

(सीनियर रिसर्च, फेलो, डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी रिसर्च फाउंडेशन)